काउंसिल ऑफ द इंस्टीटयूट ऑफ चार्टर्ड एकाउंटेंट ऑफ

भारत तथा अन्य

बनाम

बी. मुकर्जिया

(भगवती, एस.के. दास और गजेन्द्रगडकर, जेजे.)

चार्टर्ड एकाउंटेंट-न्यायालय द्वारा परिसमापक के रूप में नियुक्त किए जाने के दौरान किया गया दुराचार - यदि व्यावसायिक अवचार की श्रेणी में है-संदर्भ-उच्च न्यायालय की शक्ति- चार्टर्ड एकाउंटेंट एक्ट, 1949 (1949 का XXXVIII) उपधारा 2 (2), 21 और 22।

उच्च न्यायालय के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी, जो कि एक चार्टर्ड एकाउंटेंट तथा इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउंटेंट्स का सदस्य है, को तीन बीमा कंपनियों का परिसमापक नियुक्त किया गया था। उच्च न्यायालय के आदेशों के अनुसरण में उक्त कंपनियों हेतु वह अभिलेख, नकद तथा प्रतिभूति प्राप्त करता था। सहायक बीमा नियंत्रक ने पाया कि उसका परिसमापक के रूप में आचरण पूरी तरह से असंतोषजनक था तथा वह उसे, संबोधित पत्रों का भी जवाब नहीं देता था। उसकी नियुक्ति रद्द कर दी गई तथा उसके स्थान पर अन्य व्यक्ति को नियुक्त किया गया। बारंबार माँग करने के बावजूद वह समस्त अभिलेखों, नकद, प्रतिभूति को लौटाने में विफल रहा। उसके विरूद्ध चार्टर्ड एकाउंटेंट्स परिषद के समक्ष शिकायत दर्ज करवायी गयी। इसके उपरांत की गई जांच में प्रत्यर्थी को दुराचार का दोषी पाया गया तथा परिषद द्वारा धारा 21 चार्टर्ड एकाउंटेंटस एक्ट के तहत कार्यवाही करने हेतु रिपोर्ट उच्च न्यायालय को प्रेषित की। उच्च न्यायालय ने इस आधार पर उक्त संदर्भित रिपोर्ट को खारिज कर दिया कि जिस

आचरण के लिए प्रत्यर्थी को दोषी पाया गया वह व्यावसायिक अवचार की श्रेणी में नहीं आता तथा अधिनियम की धारा 21 व 22 के प्रावधानों को आकर्षित नहीं करता।

अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी जब परिसमापक के रूप में कार्य करता हो तो यह माना जावेगा कि वह धारा 2 (2) अधिनियम की परिधि में चार्टर्ड एकाउंटेंट के रूप में व्यवहार कर रहा है। धारा 22 में परिभाषित "व्यावसायिक अवचार", समावेशी है तथा परिषद जांच आयोजित कर सकती है तथा संस्थान के सदस्य को आचरण का दोषी पाये जाने पर जो कि उसकी राय में उसे संस्थान का सदस्य बनने के लिए अयोग्य बनाता हो, भले ही ऐसा आचरण धारा 22 संदर्भित अनुसूची को आकर्षित न करता हो, अधिनियम की परिधि में प्रत्यर्थी का आाचरण अत्यंत अनुचित तथा अयोग्य एवं व्यावसायिक अवचार के समतुलनीय है।

धारा 21 अधिनियम में दिए गए निर्देश में उच्च न्यायालय को वृहद शक्तियां प्राप्त हैं, जिसके तहत वह पक्षकारान के मध्य पूर्ण न्याय करने हेतु किसी भी माध्यम को अपना सकता है। वह परिषद द्वारा निकाले गये निष्कर्षों की शुद्धता की जांच कर सकता है अथवा मामले को पुनः अग्रिम जांच हेतु भेजकर निकाले गये नव-निष्कर्ष को मंगवा सकता है। उच्च न्यायालय गुणावगुण पर निकाले गये निष्कर्ष से बाध्य नहीं है तथा वह उसे स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारिताः सिविल अपील 170/1956।

वर्ष 1954 के मामला संख्या 107 में चार्टर्ड एकाउंटेंट एक्ट 1949 में प्रदत्त विशिष्ठ क्षेत्राधिकारिता के तहत कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा 12 जनवरी, 1955 को पारित निर्णय तथा आदेश के संबंध में विशेष अनुमति प्राप्त कर संस्थित अपील।

एम.सी. सीतलवाड़, भारत के महान्यायवादी, एस.एन. एंडले, जे.बी. दादाचंजी और रामेश्वर नाथ, याचिकाकर्ता।

अश्विनी कुमार घोष, टी.एस. वेंकटरमन और के.आर. चौधरी, उत्तरदाताओं के लिए।

10 सितंबर 1957, को निम्नलिखित निर्णय न्यायालय द्वारा दिया गया था।

गजेन्द्रगडकर जे.- प्रमुख तथ्य, जिनके अग्रसरण में हस्तगत अपील संस्थित हुई, वे विवाद का विषय नहीं है तथा सुविधापूर्वक तरीके से प्रारंभिक स्तर पर उद्धरित की जा सकती है। प्रत्यर्थी माह 17 जुलाई, 1933 को पंजीकृत एकाउंटेंट के रूप में आडिटर्स समीक्षक नियम, 1932 के तहत नामांकित हुआ। जब चार्टर्ड एकाउंटेंट एक्ट 1949 में प्रवर्तनीय हुआ, तब माह जुलाई 1, 1949 में प्रत्यर्थी भारतीय चार्टर्ड एकाउंटेंटस की परिषद में नामांकित हुआ। माह सितंबर 13, 1950 में प्रत्यर्थी को तीन कंपनियों का परिसमापक नियुक्त किया गया। प्रत्यर्थी द्वारा तीनों कंपनियों की ओर से भारतीय रिजर्व बैंक में जमा करवाई गई राशि एवं प्रतिभूतियों की धनवापसी की किंतु तीनों कंपनियों के परिसमापन की प्रगति संदर्भित कोई रिपोर्ट नहीं दी। प्रत्यर्थी से बारंबार अतिरिक्त बीमा सहायक नियंत्रक द्वारा किए गए अनुरोध की भी प्रतिक्रिया नहीं की। परिसमापक के रूप में प्रत्यर्थी ने कलकत्ता में केन्द्रिय सरकार के सॉलिसिटर श्री एस.के. मण्डल को कंपनी के समापन कार्यवाही के संबंध में कर लागत के भुगतान हेतु एक चैक दिया किंतु उक्त चैक भुगतान की व्यवस्था नहीं किए जाने के आधार पर अनादरित होकर वापस कर दिया गया। जब अतिरिक्त बीमा सहायक नियंत्रक ने प्रत्यर्थी के परिसमापक के रूप में आचरण को असंतोषप्रद पाया तथा प्रत्यर्थी द्वारा उसे प्रेषित पत्रों का जवाब नहीं दिए जाने का सामान्य शिष्टाचार का प्रदर्शन भी नहीं किया गया, तब जरिए पत्र दिनांकित अक्टूबर 29, 1952 द्वारा उसकी परिसमापक के रूप में की गई नियुक्ति को निरस्त करने हेतु वह अग्रसर हुआ। इसके उपरांत प्रत्यर्थी को समस्त लेखा पुस्तकों, अभिलेखों दस्तावेजात आदि को श्री एन.एन.दास, जिसे उसके स्थान पर परिसमापक नियुक्त किया गया, को सौंपने का कहा गया। श्री दास तथा अतिरिक्त बीमा सहायक

नियंत्रक द्वारा तीनों कंपनियों की परिसम्पत्तियां तथा अभिलेखों को श्री दास को देने का बारंबार अनुरोध किया गया। प्रत्यर्थी के पास 11,950 मूल्य की प्रतिभूति तथा 642 रुपये की नकदी यूनाइटेड कॉमन प्रो. इंश्योरेंस कंपनी के खाते की थी। उसके पास एशियाटिक प्रोविडेंट कंपनी लिमिटेड के खाते की 12,100 रुपये मूल्य की प्रतिभूति तथा सिटिजन ऑफ इंडिया प्रोविडेंट इंश्योरेंस कॉपरेटिव लिमिटेड के खाते की प्रतिभूतियां एवं नकदी भी थी। इन राशियों में से प्रत्यर्थी ने एशियाटिक प्रोविडेंट कंपनी तथा यूनाइटेड कॉमन प्रोविडेंट इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड की क्रमशः 10,000 रुपये तथा 350 रुपये मूल्य की प्रतिभूति लौटायी। पूर्वोक्त तीनों कंपनियों के खातों की शेष प्रतिभूतियों तथा नकदी को लौटाने में प्रत्यर्थी विफल रहा। इस प्रक्रम पर प्रत्यर्थी के विरूद्ध कलकत्ता स्थित भारतीय चार्टर्ड एकाउंटेंट संस्थान की परिषद के समक्ष शिकायत पेश की गई। अधिनियम के प्रावधानानुसार परिषद की अनुशासनात्मक कमेटी ने मामले में जांच की। प्रत्यर्थी को नोटिस दिया गया किंतु उसने निश्चित समयावधि में लिखित जवाब पेश नहीं किया। दिनांक 01 अगस्त, 1953 को प्रत्यर्थी द्वारा इस अमर का पत्र प्रेषित किया गया कि वह बीमार था और व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने में असमर्थ रहा। प्रत्यर्थी द्वारा यह भी अनुरोध किया गया कि मामले को स्थगित किया जावे। तदनुसार कार्यवाही दिनांक 29 अगस्त, 1953 तक स्थगित की गयी तथा उक्त दिवस प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्ता द्वारा उपस्थित होकर इस अमर का प्रार्थना पत्र पेश किया गया कि प्रत्यर्थी आवश्यक लेखा को प्रदान किए बगैर सम्पूर्ण नकदी तथा लेखा पुस्तकों, अभिलेखों आदि नवीन नियुक्त परिसमापक को हस्तांतरित कर देगा। यह अभिप्रेत होता है कि श्री दास जो परिसमापक के रूप में बाद में नियुक्त किए गए, द्वारा अनुशासनात्मक समिति के समक्ष साक्ष्य पेश की। यद्यपि प्रत्यर्थी को अनुशासनात्मक समिति के समक्ष उपस्थित होने हेतु बहुतेरे अवसर प्रदान किये गये किंतु वह न तो उपस्थित हुआ और न ही कार्यवाहियों में सम्मिलित हुआ। अंततः समिति द्वारा दिनांक 13 सितम्बर, 1953 को

रिपोर्ट दी गयी तथा यह पाया गया कि प्रत्यर्थी घोर लापरवाही का दोषी था तथा लेखा पुस्तकों व परिसम्पत्तियों का अधिभार नवनियुक्त परिसमापक को सुपुर्द नहीं कर अपनी व्यावसायिक कर्तव्यों से विमुख रहा। अधिनियम के प्रावधानानुसार उक्त रिपोर्ट पर परिषद द्वारा विचार किया गया। परिषद, अनुशासनात्मक समिति की ओर से निकाले गये निष्कर्ष से सहमत हुई किंतु यह मत लिया गया कि प्रत्यर्थी के क्रियाकलापों में तथा उसके स्तर पर रखी गयी चूक गंभीर प्रकृति की है, जो घोर लापरवाही की श्रेणी में आती है। परिषद द्वारा निकाले गये निष्कर्ष कलकत्ता उच्च न्यायालय को अधिनियम की धारा 21(1) के तहत प्रेषित किया गया तथा मामले की सुनवाई विद्वान मुख्य न्यायाधिपति तथा न्यायाधिपति श्री लहरी द्वारा की गयी। उनके द्वारा दिनांक 12 जनवरी, 1955 को पारित निर्णयानुसार प्रश्नगत संदर्भ को इस आधार पर खारिज किया गया कि अधिनियम के तहत प्रत्यर्थी के विरूद्ध किसी प्रकार की कार्यवाही नहीं की जा सकती, जबकि प्रत्यर्थी के विरूद्ध साबित किये गये तथ्यों के अनुसार यह परिलक्षित हुआ था कि "उसके द्वारा बेईमानी नहीं गयी किंतु वह घोर अनुचित आचरण का दोषी था"। उक्त तथ्यों के आधार पर हमारे समक्ष मुख्य विचारणीय बिंदु यह है कि अधिनियम के तहत अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकारिता का विस्तार तथा दायरा क्या है, जो प्रत्यर्थी के विरूद्ध प्रयोग में लिया जा सकता है।

यह आवश्यक हो जाता है कि अधिनियम के महत्वपूर्ण प्रावधानों की समीक्षा की जावे। यह अधिनियम वर्ष 1949 में प्रवृत्त किया गया तथा इस कारण पारित हुआ क्योंकि विधायिका द्वारा पेशेवर लेखाकारों को विनियमित करना समीचीन माना गया तथा इस हेतु चार्टर्ड एकाउंटेंट के संस्थान की स्थापना करने का प्रावधान किया गया। धारा 2 उपधारा (1)(बी) चार्टर्ड एकाउंटेंट को इस प्रकार परिभाषित करती है, जिससे यह अभिप्रेत होता है कि "जो व्यक्ति संस्थान का सदस्य है तथा अभ्यासरत है "धारा 2 उपधारा (2) के अनुसार संस्थान के सदस्यों को अभ्यासरत होना माना जायेगा। जब

वह व्यक्ति अथवा चार्टर्ड एकाउंटेंट साझेदारी में पारिश्रमिक प्राप्त कर या पारिश्रमिक प्राप्त होने पर निम्न 4 उपखण्डों में उल्लेखित किसी भी कार्य को करता हैः

.....उपखण्ड (iv) हमारे लिए प्रासंगिक हैः

"धारा 2 (2) iv): (जहाँ एक सदस्य) ऐसा प्रस्तुत करता है परिषद की राय में अन्य सेवाएँ हैं या एक चार्टर्ड एकाउंटेंट द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है, (वह अभ्यासरत माना जाता है)। "

धारा 4 में चार्टर्ड एकाउंटेंट के रजिस्टर में नाम की प्रविष्टि को प्राविधित करता है। धारा 5 परिषद के सदस्यों को दो वर्गों में क्रमशः संयोगी तथा अध्यता के रूप में विभाजित करती है। धारा 6 के प्रावधानानुसार परिषद का कोई भी सदस्य अध्ययन करने हेतु उसी अवस्था में अधिकृत होगा जब तक उसने परिषद से अभ्यासरत रहने का प्रमाण पत्र प्राप्त न कर लिया हो। धारा 7 के तहत संस्थान का प्रत्येक अभ्यासरत सदस्य एक चार्टर्ड एकाउंटेंट के रूप में नामित होगा तथा कोई भी भारत संघ में लेखाकार का अभ्यास करने हेतु किसी अन्य पदनाम का उपयोग नहीं करेगा, चाहे वह इसके अतिरिक्त हो या प्रतिस्थापित हो। धारा 8 अक्षमताओ से संबंधित है, धारा 8 उपखण्ड (i) से (vi) में प्राविधित किसी अक्षमता से यदि कोई व्यक्ति ग्रस्त हो तो वह रजिस्टर में स्वयं के नाम का इंद्राज करवाने का अधिकारी नहीं होगा। उपखण्ड (v) उन अक्षमताओं से संबंधित है, जो किसी सक्षम न्यायालय द्वारा की गयी दोषसिद्धि से उदभूत हो, चाहे वह भारत राज्य के भीतर हो गया उसके बाहर, जो नैतिक अधमता तथा परिवहन से दण्डनीय या कारावासीय दण्ड या ऐसे अपराध से संबंधित हो जो तकनीकी प्रकृति का ना हो, जो उसके द्वारा व्यावसायिक रूप में रहते हुए किया गया, जब तक कि किये गये अपराध के संबंध में उसे या उसके द्वारा की गयी हो या उसकी ओर से पेश प्रार्थना के आधार पर केंद्र सरकार ने लिखित में उक्त अक्षमता को हटाने

दिया हो। उपखण्ड (iv) उन अक्षमताओं से संबंधित है जब चार्टर्ड एकाउंटेंट किसी जांच में ऐसे आचरण का दोषी पाया जाता हो, जो उसे संस्थान का सदस्य रहने के लिए अयोग्य बनाता है। अध्याय III परिषद के संविधान, परिषद की समितियों, परिषद के वित्त से संबंधित है, अध्याय IV धारा 20 उपधारा (ए)(बी)(सी) के प्रावधान, सदस्यों के रजिस्टर तथा चार्टर्ड एकाउंटेंट का रजिस्टर से नाम हटाने से संबंधित है, धारा 20 उपधारा (2) के तहत यह प्राविधित है कि परिषद किसी भी सदस्य का नाम,जो उच्च न्यायालय द्वारा दुराचरण का दोषी पाया जाता है, जो उसे संस्थान का सदस्य होने के लिए अयोग्य बनाता है, को हटा दिया जावेगा। अध्याय V दुराचरण के प्रश्न से संबंधित है, जो उपधारा 21 तथा 22 से अंगीकृत है। अध्याय VI क्षेत्रीय परिषद के गठन एवं कार्यों से संबंधित हैः अध्याय VII शास्तियों से तथा अध्याय VIII विविध मामलों से संबंधित है। धारा 21 समिति के सदस्यों से दुराचार के संबंध में की गयी जांच प्रक्रिया से संबंधित है, जिसके अनुसारः

"धारा 21. (1) -जहाँ सूचना प्राप्त होने पर या उसे की गई शिकायत की प्राप्ति पर, परिषद की राय है कि संस्थान का कोई भी सदस्य इस आचरण का दोषी रहा है, जो यदि साबित हो जाता है, तो उसे संस्थान का सदस्य होने के लिए अयोग्य बना देगा, या जहां संस्थान के किसी सदस्य के खिलाफ केंद्र सरकार द्वारा या उसकी ओर से शिकायत की गई है, तो परिषद ऐसी तरीके से जांच कराएगी जो निर्धारित की जाए, और परिषद के निष्कर्ष को उच्च न्यायालय को भेजा जाएगा।

(2) .....

(3) .....

(4) .....

धारा 21 की उप-धाराएँ (2), (3) और (4) उच्च न्यायालय को धारा 21 उपधारा 1 के तहत दिये गये संदर्भों को निपटाने की शक्तियों को प्राविधित करती है। धारा 22 'दुराचार' को परिभाषित करती है। वह इस प्रकार हैः

''धारा 22 दुराचार को परिभाषित करती है, जिसके अनुसार ऐसा आचरण जो यदि साबित हो जाता है, जो किसी व्यक्ति को संस्थान का सदस्य होने के लिए अयोग्य बना दे, वह अनुसूची में निर्देशिष्ट कोई कार्य या चूक में शामिल होना माना जायेगा, किंतु इस धारा के तहत परिषद को धारा 21 की उपधारा 1 के अधीन संस्थान के किसी सदस्य के दुराचार करने संदर्भित जांच करने की प्राप्त शक्तियों को समिति होना नहीं माना जावेगा।

कलकत्ता उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जिस आचरण का प्रत्यर्थी दोषी होना माना गया है, वह व्यावसायिक दुराचार की श्रेणी में नहीं आता और इस कारणवश अधिनियम की धारा 21 व 22 के प्रावधान आकर्षित नहीं होते। विद्वान मुख्य न्यायाधिपति द्वारा अपने फैसले में यह अवधारित किया कि यह तर्क स्वीकार्य योग्य नहीं है कि दुराचार, जो व्यवसाय के अभ्यास करने से संबंधित नहीं है, वह भी अधिनियम के दायरे में आता हो। जब तक कि ऐसा दुराचार नैतिक अधमता अथवा जिम्मेदार पेशे का सदस्य बना रहने के लिए उस व्यक्ति को अयोग्य बना देता हो। विद्वान न्यायाधीशों द्वारा यह भी पाया गया कि यदि प्रत्यर्थी के विरूद्ध दुराचार करने के संबंध में धारा 21 व 22 के प्रावधान आकर्षित होते हैं तो भी इस आधार पर उसके विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती तथा संस्थान न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं कर सकता कि वह हस्तगत प्रकरण में प्रत्यर्थी को व्यावसायिक क्षमता के अतिरिक्त किए गए दुराचार का दोषी पाये जाने के आधार पर कार्यवाही करे क्योंकि इस प्रकार का निष्कर्ष न तो न्यायालय में रिपोर्ट किया गया और ना ही परिषद द्वारा निकाला गया और न्यायालय में भी इसकी रिपोर्ट नहीं है। उक्त निष्कर्षों की शुद्धता

को विद्वान एटार्नी जनरल ने हमारे सम्मुख चुनौती दी है, जिन्होंने तर्क दिया कि कलकत्ता उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने धारा 21 व 22 के प्रावधानों के संबंध में संकीर्ण एवं प्रतिबंधित दृष्टिकोण अपनाकर यह पाया कि प्रत्यर्थी का आचरण व्यावसायिक दुराचरण की श्रेणी में नहीं आता है; उनके द्वारा यह भी आग्रह किया गया कि विद्वान न्यायाधीशों द्वारा प्रत्यर्थी के विरूद्ध तकनीकी आधार पर कोई कार्यवाही नहीं की जबकि उक्त दोनों धाराओं की व्यापक व्याख्या को स्वीकार कर लिया, जिससे उच्च न्यायालय की धारा 21 उपधारा 2, 3, 4 के तहत प्रदत्त शक्तियों की प्रकृति और विस्तार के संबंध में एक गलत धारणा बनेगी। हमारे विचार में विद्वान महान्यायवादी द्वारा उठाये गये विवाद सुस्थापित हैं, जिनकी पुष्टि करना उचित होगा।

सर्वप्रथम इस पर विचार करना होगा कि क्या प्रत्यर्थी का आचरण, व्यावसायिक दुराचरण है अथवा नहीं। इस प्रश्न के निपटान हेतु हमें अधिनियम की धारा 2 उपधारा (2)(iv) को ध्यान में रखना आवश्यक है। उक्त प्रावधान के तहत संस्थान का सदस्य उसी अवस्था में अभ्यस्त होना माना जाता है जब वह परिषद की राय में ऐसी सेवाएं प्रदान कर रहा है, जो एक चार्टर्ड एकाउंटेंट द्वारा प्रदान की जाती हैं या प्रदान की जा सकती हैं। दूसरे शब्दों में संस्था एक सदस्य के रूप में जो खुद को लेखांकन के कार्य में अभ्यासरत हो, वह चार्टर्ड एकाउंटेंट के रूप में व्यवहार करने वाला माना जाता है तथा चार्टर्ड एकाउंटेंट के रूप में वह उस अवस्था में अभ्यासरत होना माना जाता है, जब वह धारा 2 उपधारा (2)(iv) से प्राविधित अन्य सेवाएं प्रदान कर रहा हो। अन्य सेवाएं जो इस उपधारा के प्रावधान को आकर्षित करती है, वे अधिनियम के प्रावधानों के आलोक में तय की जा सकती है। अधिनियम की धारा 30 परिषद को अधिनियम के उददेश्य को पूरा करने हेतु भारत के राजपत्र में विनियमन प्रकाशित करने की अधिकारिता प्रदान करती है तथा इस प्रकार के विनियमन की एक प्रति संस्थान के प्रत्येक सदस्य को प्रेषित किया जाना अनिवार्य होता है। धारा 30 उपधारा (2) बहुतेरे विषयों को अंगीकृत

करती है, जिनके संबंध में विनियमन बनाए जा सकते हैं। हालांकि, वे विभिन्न विषयों की गणना के संबंध में धारा 30 उपधारा (1) में प्राविधित सामान्य शक्तियों के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं है। उपधारा (4) के प्रावधानानुसार उपधारा (1) व (2) के अतिरिक्त केन्द्र सरकार इस धारा के तहत उल्लेखित उद्देश्यों के लिए पहले विनियमन बना सकती है तथा ऐसी उपधारणा ली जाएगी कि उक्त विनियमन परिषद द्वारा बनाए गए तथा वे अधिनियम के प्रवृत्त होने की दिनांक से लागू होंना माना जायेंगे, जब तक वे परिषद द्वारा संशोधित, परिवर्तित अथवा निरस्त नहीं किए जाते। विनियमन 78 मूल रूप से केंद्र सरकार द्वारा धारा 30 उपधारा (4) के तहत मूल रूप से तैयार किए विनियमों में से एक है। जो इस प्रकार हैः-

"विनियम 78 परिषद में निहित विवेकाधिकार से बिना पूर्वाग्रह एक चार्टर्ड एकाउंटेंट, परिसमापक, न्यासी, निष्पादक, प्रशासक, मध्यस्थ, प्राप्तकर्ता, सलाहकार या वित्तीय और कराधान मामलों की लागत के लिए प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर सकता है और ऐसी नियुक्ति प्राप्त कर सकता है जो केंद्रीय या राज्य सरकारों, किसी कानूनी प्राधिकरण द्वारा की जाए या अपनी व्यावसायिक क्षमता में सचिव के रूप में कार्य कर सकता है, जो रोजगार वेतन-सह-पूर्णकालिक आधार पर नहीं हो।

परिषद द्वारा 22 अगस्त, 1953 की अधिसूचना द्वारा अंतिम खंड जोड़ा गया है। अब यह स्पष्ट है कि जब प्रत्यर्थी ने विचाराधीन तीन कंपनियों के परिसमापक के रूप में अपनी नियुक्ति स्वीकार की तो उसने इसके अनुसरण में परिसमापक के रूप में कलकत्ता उच्च न्यायालय के आदेश की पालना में काम करने के लिए सहमत हुआ तथा इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस तरह के परिसमापक के रूप में कार्य करते हुए वह ऐसी सेवाएं प्रदान कर रहा था जो परिषद के मत में एक चार्टर्ड एकाउंटेंट द्वारा प्रदान की जा सकती हैं। विनियमन 78 के प्रावधान पर धारा (2) उपधारा (iv) के आलोक में हो तथा उक्त दोनों प्रावधानों पर समेकित रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट दर्शित होता है कि जब

प्रत्यर्थी कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में परिसमापक के रूप में काम कर रहा था, तब धारा 2 उपधारा (2) के अधीन वह अभ्यासरत होने की श्रेणी में था। हमें यह अवधारणा लेने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं है कि चार्टर्ड एकाउंटेंट जो धारा 2 उपधारा (iv) के तहत सेवाएं प्रदान कर रहे हैं, वे उसी प्रकार अभ्यास में होने माने जायेंगे, जिनके दायित्वों के संबंध में धारा 2 उपधारा (i) (ii) (iii) यदि यह सही स्थिति है तो एेसी अवस्था में इस विचार को स्वीकार करना मुश्किल होगा कि परिसमापक के दायित्वों का निर्वहन करते वक्त चार्टर्ड एकाउंटेंट, जिसके संकीर्ण तथा प्रतिबंधित अर्थ के भीतर, दायित्वों के आचरण के समतुल्य नहीं है। यदि परिसमापक के रूप में कार्य करते समय, प्रत्यर्थी को एक चार्टर्ड एकाउंटेंट के रूप में व्यवहार करना माना जाना चाहिए, तो ऐसी अवस्था में उसके समस्त कार्य एवं चूक को परिसमापक के आचरण के संबंध में साबित करते हुए व्यावसायिक कार्य तथा चूक मानी जानी चाहिए "वेबस्टर के नए अंतर्राष्ट्रीय शब्दकोश के अनुसार "अभ्यास"का अर्थ है"किसी भी पेशे अथवा व्यवसाय को करना "तथा यदि परिसमापक के रूप में धारा 2 (2) के प्रावधान आकर्षित होते हैं तो परिसमापक के समस्त कर्तव्यों का निर्वहन किया जाना चाहिए और इस अभ्यास के दौरान उसका आचरण परिसमापक के रूप का ही होना माना जावेगा। धारा 2 उपधारा (2) खण्ड (iv) का प्रावधान विधायिका द्वारा जानबूझकर इस कारण अंगीकृत किया गया है, जिसके पीछे हमारे मत में यह उद्देश्य रहा होगा कि अधिनियम के तहत विधिक संस्थान की अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकारिता स्थापित हो सके। ऐसा इसलिए है क्योंकि विधानमण्डल चाहता था कि चार्टर्ड एकाउंटेंटस के सम्मानपूर्वक आचरण के संबंध में स्वनिहित आचार संहिता प्रदान किया जा सके और इसी कारण धारा 2(2)(iv) में चार्टर्ड एकाउंटेंटस के "व्यवहार"में होने की अभिव्यक्ति को अंगीकृत किया गया है। तथापि हमें यह निष्कर्ष निकालना

चाहिए कि सिद्ध किए गए तथ्यों के आधार पर प्रत्यर्थी स्पष्ट रूप से व्यावसायिक दुराचार का दोषी है।

इस प्रकार वास्तविक रूप से संस्थित की गयी हस्तगत अपील निस्तारित हो सकेगी क्योंकि एक बार यह अभिनिर्धारणा ली जाती है तो अधिनियम की धारा 21(iii) के प्रावधानों के तहत आदेश पारित किया जा सकता है। चूंकि विद्वान महान्यायवादी ने वैल्पिक रूप से हमारे समक्ष आग्रह किया है कि यदि अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकारिता मात्र व्यावसायिक दुराचरण तक सीमित रखी जाती है, तो तकनीकी रूप से कलकत्ता उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने "आचरण"का गलत अर्थ निकाला है- उक्त प्रश्न पर भी संक्षिप्त चर्चा करने का प्रस्ताव लिया जाता है।

धारा 21, उप-धारा (1), उन दो श्रेणियों के मामलों से संबंधित है, जिनमें संस्थान के सदस्यों के दुराचरण की भी जांच की जा सकती है। यदि किसी चार्टर्ड एकाउंटेंट के आचरण के विरूद्ध संस्थान को जानकारी अथवा शिकायत प्राप्त होती है तो परिषद सीधे ही जांच करने के लिए बाध्य नहीं है। परिषद को इसकी प्रकृति की जांच करने की आवश्यकता है या शिकायत दर्ज करें तथा यह तय करें कि यदि तथ्यों के आधार पर सदस्य के विरूद्ध आरोप साबित होते हैं, तो ऐसी अवस्था में वह व्यक्ति संस्थान के सदस्य होने के लिए अयोग्य हो जावेगा। दूसरे शब्दों में, सदस्यों के खिलाफ व्यक्तिगत शिकायत करने के मामलों में परिषद प्रथम दृष्टया यह पाती है कि सदस्य के विरूद्ध किए गए अधिरोपण साबित हो जाते हैं, तो सदस्य के खिलाफ अनुशासनात्मक अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर परिषद को जांच करने की आवश्यकता है। आक्षेपित आचरण ऐसा होना चाहिए जो यदि साबित हो जाता है, तो सदस्य, संस्थान का सदस्य होने के लिए अयोग्य हो जावेगा। अन्य श्रेणी के मामलों में केंद्र सरकार से परिषद द्वारा प्राप्त शिकायत होना संदर्भित है। इस वर्ग के मामलों के संबंध में परिषद के लिए यह आवश्यक नहीं है और वास्तव में उसे जांच किए जाने से पूर्व प्रथम दृष्टया प्रकरण होने

के पैमाने को आधार बनाने की क्षेत्राधिकारिता नहीं है। जांच करने से पहले परीक्षण को लागू करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। परिषद से ऐसी शिकायत पर तुरंत जांच कराने की आवश्यकता है। दोनों ही मामलों में जब जांच पूरी हो जाती है, तो परिषद के निष्कर्षों को उच्च न्यायालय को भेजा जाना होता है। धारा 22, "ऐसा आचरण जो, यदि साबित हो जाता है, तो किसी व्यक्ति को संस्थान का सदस्य होने के लिए अयोग्य बना देगा"कि अभिव्यक्ति को परिभाषित करती है, जो एक समावेशी परिभाषा है; जिसमें अनुसूची में उल्लेखित कार्य या चूक शामिल है, लेकिन धारा 22 का उत्तरार्द्ध भाग स्पष्ट रूप से यह प्राविधित करता है कि इस धारा में निहित किसी भी बात का अर्थ उप-धाराओं के तहत परिषद को प्रदत्त शक्ति को किसी भी तरह से सीमित या कम करना नहीं होगा। इस प्रकार यह दर्शित होता है कि यद्यपि धारा 21 उपधारा (1) का महत्वपूर्ण अंश से चूक अथवा निर्दिष्ट कार्य होना अभिप्रेत है किंतु अनुसूची में निर्दिष्ट कार्य और चूक की सूची संपूर्ण नहीं हैं; और, इससे किसी भी घटना को सीमित करना अभिप्रेत नहीं होता। अनुसूची जिससे धारा 22 संदर्भित है, में बहुसंख्यक कार्य एवं चूक को खण्ड (ए) से (वी) में समाहित किया गया है तथा उक्त अनुसूची यह प्राविधित करती है कि यदि उक्त कार्यों एवं चूकों से किसी चार्टर्ड एकाउंटेंट के विरूद्ध साबित हो जाती है तो वह चार्टर्ड एकाउंटेंट का दोषी माना जाता है जो उसे संस्थान का सदस्य रहने के लिए अयोग्य बनाता है। खंड (v) की शब्दावली सामान्य है क्योंकि वह उन मामलों से संदर्भित है जहां लेखाकार ऐसे अन्य चूक अथवा कार्य का दोषी पाया जाता है जिनके संबंध में परिषद द्वारा अधिसूचना भारत के राजपत्र में जारी की हो। यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी का आचरण उक्त अनुसूची के किसी भी प्रावधान को आकर्षित नहीं करती और इस प्रकार धारा 22 के प्रथम अंश में आना नहीं माना जा सकता किंतु यदि धारा 22 से यह तात्पर्यित है कि वह स्वयं एक समावेशी परिभाषा है और उक्त प्रावधान के बाद वाले भाग में स्पष्ट रूप से वृहद शक्तियों एवं

क्षेत्राधिकारिता को संरक्षित करता है, जो परिषद को प्रदान की गयी है, जिसके तहत धारा 21 उपधारा (1) में परिषद जांच कर सकता है तो यह अवधारणा लिया जाना उचित नहीं होगा कि अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकारिता केवल मात्र उन्हीं आचरणों के संबंध में क्रियाशील होगी, जो स्पष्ट रूप से धारा 22 की समावेशी परिभाषा में आते हों। इस संबंध में धारा 8 जो कि अक्षमताओं से संबंधित है, प्रासंगिक है, जिसको उद्धरित किया जाना उचित होगा धारा 8 उपधारा (v) और (vi), इस तर्क का समर्थन करती है कि अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकारिता का प्रयोग चार्टर्ड एकाउंटेंट के विरूद्ध उन दशाओ में भी किया जा सकता है, जो धारा 22 की समावेशी परिभाषा में न आते हों। अतः हम यह अवधारणा लेते हैं कि यदि संस्थान का कोई सदस्य प्रथम दृष्टया दुराचरण का दोषी पाया जाता है जो परिषद की राय में उसे संस्थान की सदस्यता के लिए अयोग्य बनाता हो, जबकि ऐसा आचरण अधिनियम की अनुसूची के किसी भी प्रावधान को आकर्षित नहीं करता तो भी परिषद जांच सदस्य के आचरण के संबंध में जांच कर सकती है तथा ऐसी अवस्था में धारा 21 उपधारा (3) के तहत उच्च न्यायालय द्वारा उक्त निकाले गये निष्कर्ष के संबंध में की गयी यथोचित कार्यवाही न्यायोचित है। यह सत्य है कि उच्च न्यायालय उल्लंघन करने वाले सदस्य के विरूद्ध कार्रवाई उसी अवस्था में कर सकता है, जब वह परिषद द्वारा निकाले गये निष्कर्ष को स्वीकार करता है और इसके अतिरिक्त नहीं। इस निष्कर्ष को और अधिक बल मिलता है यदि हम धारा 2 उपधारा (2) में "अभ्यास में होना"के विस्तारित अर्थ को ध्यान में रखें, जिसके संबंध में पूर्व में विवेचना की जा चुकी है। हस्तगत मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों द्वारा निकाले गये निष्कर्ष को हमें उलटना चाहिए, जिन्होंने उक्त युक्ति का संकीर्ण अर्थ लेते हुए यह पाया कि प्रत्यर्थी के विरूद्ध साबित आचरण धारा 21 व 22 की परीधि में नहीं आता क्योंकि उक्त आचरण चार्टर्ड एकाउंटेंट के व्यवसाय के अभ्यास से जुडा हुआ नहीं है।

द्वितीय प्रश्न, जो हमारे समक्ष है, वह धारा 21 उपधारा (2), (3) और (4) के तहत उच्च न्यायालयों की क्षेत्राधिकारिता एवं परीधि से संबंधित है। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों द्वारा यह अवधारणा ली गयी कि यदि वे धारा 21 व 22 का वृहद अर्थ भी लेने पर सहमत होते हैं तो भी प्रत्यर्थी के विरूद्ध प्रश्नगत मामले में आदेश पारित करना न्यायसंगत नहीं होगा क्योंकि उच्च न्यायालय को जो संदर्भ दिया गया है, वह मात्र यह है कि प्रत्यर्थी व्यावसायिक दुराचरण करने का संकीर्ण अर्थों में दोषी था। दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय द्वारा यह सोचा गया कि यदि तात्विक शब्दों का वृहद अर्थ लिया जाता है तो उच्च न्यायालय के समक्ष एक नवीन मामले का उदभव हो जाएगा और ऐसी अवस्था में उच्च न्यायालय द्वारा उठाया गया कदम न्यायपरक नहीं होगा। हमारे विचार से उक्त धारणा ठोस आधारों पर नहीं ली गयी। धारा 21, उपधारा (2), उस प्रक्रिया को प्राविधित करती है जब धारा 21 उपधारा (1) के तहत परिषद द्वारा निकाले गये मत का संदर्भ उच्च न्यायालय को भेजा जाता है। धारा 21 उपधारा (1) संदर्भ की सुनवाई हेतु नियत दिवस की सूचना पक्षकारान को प्रदान की जानी होती है तथा उसे सुनवाई का अवसर भी दिया जाना होता है। धारा 21, उपधारा (3) यह प्राविधित करती है कि उच्च न्यायालय या तो ऐसे अंतिम आदेश पारित कर सकता है अथवा मामले को अग्रिम जांच हेतु परिषद को पुनः वापस भेज सकता है तथा अग्रिम जांच हो जाने के उपरांत धारा 2 के तहत मामले को निपटायें और उस पर अंतिम आदेश पारित करें। यह स्पष्ट है कि धारा 21 उपधारा (1) के तहत पेश संदर्भ की सुनवाई के दौरान उच्च न्यायालय के पूर्व में वैधानिक निकायों द्वारा निकाले गये निष्कर्ष यथार्थता की जांच कर सकता है। उच्च न्यायालय अग्रिम जांच हेतु मामला पुनः परिषद को भिजवाकर नवीन निष्कर्ष मंगवा सकता है। ऐसा नहीं है कि प्रत्येक मामले में उच्च न्यायालय पूर्व में निकाले गये गुणावगुण पर विचार करेगा और वह उक्त निष्कर्ष का स्वीकर अथवा अस्वीकार कर सकता है। यदि किसी मामले विशेष में उच्च

न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि आक्षेप जो लगाये गये तथा साबित हुए, पर वैकल्पिक निष्कर्ष निकाल कर मामला उचित निर्देशों के साथ परिषद को भेज सकता है। धारा 21, उपधारा (3), निस्संदेह असीमित शक्तियां प्राप्त हैं, जिनके आाधार पर उच्च न्यायालय किसी भी माध्यम का चुनाव कर पक्षकारान को पूर्ण न्याय देने किसी भी माध्यम का चुनाव कर सकता है। हस्तगत मामले में इस प्रकार की कोई तकनीकी आधार नहीं है, क्योंकि वास्तविक तथ्य उभय पक्ष के मध्य निर्विवादित रहे। पक्षकारान के मध्य यह विवादित बिंदु है कि क्या अधिनियम के तहत प्रत्यर्थी के विरूद्ध पेश तथ्यों के आधार पर अनुशासनात्मक क्षेत्राधिकारिता सक्रिय की जा सकती है अथवा नहीं। अतः हम उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों द्वारा निकाले गये इस निष्कर्ष से असहमत हैं कि धारा 21 व 22 का वृहद अर्थ न लेकर परिषद ने हस्तगत मामले में प्रत्यर्थी के विरूद्ध जांच कर निष्कर्ष निकाला।

जिन न्यायिक दृष्टांतों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है, उन्हें संदर्भित किया जाना उचित होगा। जी.एम. ओका, इन रे [(1)] [1952] 22 गोम्प. गैस, आर 68) में, बॉम्बे उच्च न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा यह अवधारित किया कि जब चार्टर्ड एकाउंटेंट साक्ष्य हेतु न्यायालय के समक्ष होता है, तब वह चार्टर्ड एकाउंटेंट नहीं अपितु एक साक्षी होता है। जहां मिथ्या अभिकथन करने से चार्टर्ड एकाउंटेंट के रूप में उसके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही अमल में नहीं ली जा सकती। झूठी साक्ष्य देने हेतु उसे मिथ्या साक्ष्य देने के संबंध में वह दोषी हो सकता है और यदि वह दोषसिद्ध घोषित होता है तो ऐसी अवस्था में उक्त दोषसिद्धी के परिणामस्वरूप अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है। उक्त अवधारणा निःसंदेह कलकत्ता उच्च न्यायालय की अभिनिर्धारणा को संबल देतती है। यह स्वीकार्य है कि चार्टर्ड एकाउंटेंट की दोषसिद्धि धारा 8 उपधारा (vi) के प्रावधानों को आकृष्ट करती है और दृष्टि से बंबई उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि स्वमेव अनुशासनात्मक कार्रवाई का आधार हो सकती है कि

जो अवधारणा ली गयी है वह बिल्कुल सही है किंतु प्रत्यर्थी द्वारा अन्य अवधाराणाओ पर, जो भरोसा जताया है, वे मात्र अभिव्यक्ति हैं और न्यायिक दृष्टांत से यह अभिप्रेत होता है कि विद्वान न्यायाधीशों का धारा 2 (2) (iv) और अन्य सुसंगत प्रावधानों की ओर उस मामले में ध्यान आकर्षित नहीं करवाया गया। जैसा कि निर्णय में उल्लेखित है कि न्यायालय के सामने चार्टर्ड एकाउंटेंट द्वारा दर्शाये गये तकनीकी बिंदुओ के अतिरिक्त बहुसंख्यक अन्य साक्ष्य उसके विरूद्ध की गयी थी, जिससे उसका दुराचरण का दोष साबित हुआ। प्रत्यर्थी की ओर से श्री अश्विनी कुमार घोष द्वारा हेसेल्डिन बनाम होसेकन [(1)] [1933] 1 के.बी. 822 के दृष्टांत पर निर्भरता व्यक्त की गयी। इस दृष्टांत में न्यायविद द्वारा क्षतिपूर्ति विषयक पाॅलिसी ली थी, जो उसे अपनी पेशेवर क्षमता में कार्य करते समय किसी भी उपेक्षा, चूक या त्रुटि के कारण होने वाले नुकसान के खिलाफ बीमित करती थी। इस नीति के निर्वाह के दौरान सॉलिसिटर ने बिना बोध के अस्थिर समझौता किया, जिस कारण उसे नुकसान उठाना पडा। जब सॉलिसिटर द्वारा क्षतिपूर्ति का दावा किया, तो यह माना गया कि जिस नुकसान के संबंध में क्षतिपूर्ति का दावा किया गया था, वह सॉलिसिटर द्वारा अपनी पेशेवर क्षमता में की गई किसी भी उपेक्षा, चूक या त्रुटि के कारण नहीं हुआ था, बल्कि उसके व्यक्तिगत व्याधियों में प्रवेश करने से उत्पन्न हुआ था। हम यह नहीं पाते कि उक्त दृष्टांत किस प्रकार प्रत्यर्थी पक्ष का सहायक हो सकता है। हस्तगत प्रकरण में प्रत्यर्थी के व्यावसायिक दुराचार के संबंध में की गयी दोषसिद्धी का प्रश्न चार्टर्ड एकाउंटेंट अधिनियम के महत्वपूर्ण प्रावधानों से संबंधित है। हेसेल्डिन के दृष्टांत में विद्वान न्यायाधीश द्वारा की गयी अवधारणा उपर्युक्त प्रावधानों की व्याख्या करने में सहायक नहीं है। इसी प्रकार कृष्णस्वामी बनाम चार्टर्ड एकाउंटेंट संस्थान की परिषद [(1)](ए.आई.आर. 1953 मद्रास 79) के न्यायिक दृष्टांत, जिसमें न्यायालय के समक्ष मुख्य रूप से यह प्रश्न था कि क्या अधिनियम की धारा 21 (2) के तहत पारित आदेश सिविल प्रक्रियाओ में पारित आदेश के समतुल्य है या नहीं,

उक्त प्रश्न इस प्रकरण पर लागू नहीं होता और विचारणीय बिंदुओ को निस्तारित करने में सहायक नहीं है।

अब हमें पारित किए गए अंतिम आदेश के बिदु के संबंध में विचार करना है। हमारे विचार में प्रत्यर्थी का आचरण पूर्णतया अभ्यासरत चार्टर्ड एकाउंटेंट के योग्य नहीं था। उसके द्वारा असिस्टेंट कंट्रोल ऑफ इंश्योरेंस के पत्रों का त्वरित जवाब नहीं दिया जाना एवं दस्तावेजात व प्रतिभूतियों एवं नकदी, जो उसके द्वारा परिसमापक के रूप में प्राप्त की गयी थी, को नहीं लौटाया जाने से यह निःसंदेह यह साबित होता है कि प्रश्नगत राशि प्रतिभूति एवं नकद को लौटाने में असफल रहा एवं उक्त टालमटोल करने का उद्देश्य विषम परिस्थितियों से बचने का था। यह ऐसा आचरण नहीं है जो केवल तकनीकी रूप से अनुचित और अयोग्य अपितु यह आचरण घोर अनुचित व अयोग्य करने वाला था और इस कारण निवारक आदेश दिया जाना अनिवार्य है। यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी, जो कि चार्टर्ड एकाउंटेंट के रूप में अभ्यासरत था, के आधार पर ही कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा उसे परिसमापक के रूप में नियुक्त किया गया और इस प्रकार इस नियुक्ति से वह लाभान्वित हुआ। अभ्यासरत चार्टर्ड एकाउंटेंट तथा परिसमापक के रूप में वह दुराचरण का दोषी पाया गया जो उसके स्तर पर की तुलना में उसे संस्थान के सदस्य के लिए अयोग्य बनाता है। अतः न्यायहित में हमारा यह मानना हैं कि प्रत्यर्थी का नाम चार वर्षों के लिए रजिस्टर से हटा दिया जावे। व्यय के संबंध में प्रत्यर्थी को आदेशित किया जाता है कि वह अपीलांट द्वारा व्यय की गयी राशि इस न्यायालय में जमा करवाये तथा उभय पक्ष निचली अदालत में खर्च की गयी राशि का भार स्वयं के स्तर पर वहन करें।

अपील स्वीकार।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल **'सुवास'** की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्री राजेंद्र साहू (आर.जे.एस) सिंह द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।